वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल १३, शनिवार
दि. ०५-३-१९६६, ढाल-५, श्लोक-१०-११, प्रवचन नं. ४३

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। उसमें पाँचवी ढाल चलती है। दसवीं गाथा, संवर भावना आठवीं है। देखो ! संवर भावना किसको कहते हैं ? कि, '**आस्रव को रोकना, सो संवर है।**' भावार्थ है, भावार्थ। आस्रव क्या (है) ?'**सम्यग्दर्शनादि द्वारा मिथ्यात्वादि आस्रव रुकते हैं।**' पहले तो अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप का अभेदस्वभाव की दृष्टि अनुभव में करके मिथ्यात्व का आस्रव रुकता है। समझ में आया ? देखो ! चित्र में ढाल ली है न, ढाल ! ढाल। ढाल होती है न ? ढाल। शस्त्र को रोकने की ढाल होती है न ? भैया ! ऐसे क्या ? आत्मा शरीर, कर्म, पुण्य-पाप के भाव से रहित और अपने शुद्ध आनंदादि अनन्त गुण सहित, ऐसा अपना शुद्धस्वरूप एकरूप आनन्दरूप (है) उसका, अन्तर में एकाकार होकर अनुभव की दृष्टि करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वही मिथ्यारूपी आस्रव रोकने की ढाल है। समझ में आया ? ढाल.. ढाल। इसका नाम भी 'छहढाला' है न ? 'छहढाला'। ढाल।

मिथ्याश्रद्धा... जो आत्मा पूर्ण अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द है, उसको एक समय के अंश जितना मानना अर्थात् उसको पुण्य-पाप का विकारवाला मानना और उसको शरीर, कर्म सहित ही आत्मा मानना और शरीर, कर्म आदि परपदार्थ की क्रिया करनेवाला मानना, वह मिथ्यात्व आस्रव है।

मुमुक्षु :- जैन को सब होय ?

उत्तर :- जैन किसको कहना ? संप्रदाय में जन्म लिया तो जैन हो गये ? भगवान आत्मा जो अपना पूर्ण स्वरूप शुद्ध स्वरूप (है), उसकी अनादि से दृष्टि छूटकर, परपदार्थ (जो) अपने से भिन्न हैं, उसका कर्ता मानता है। कर्ता मानता है तो अपने को और पर को एक माने

बिना पर का कर्ता मान सकता नहीं। बराबर है ?

अपने अलावा परपदार्थ शरीर, वाणी, कर्म आदि जड़ अथवा अन्य जीव, उसका कार्य मैं कर सकता हूँ और मैं उस के कार्य कारण हूँ, ऐसा माननेवाला परद्रव्य को ही (अपने साथ) एकरूप मानता है। पर से पृथक् वह मानता नहीं। उसका नाम मिथ्यात्वभाव है।

दूसरा, शुभ और अशुभभाव जो पुण्य-पाप विकारभाव है, यह मलिन, विकृत, उपाधि विभाव है, उसका भी करनेवाला (हूँ)-ऐसा माननेवाला उस विकार को ही अपने स्वभाव में अपनाता है और अपना मानता है, उसका नाम मिथ्यादर्शन आस्रव है। भाई ! कौन अभी कोई आया था न ? आप के साथवाला कोई था। कोई आया था, कहता था कि, हम लोग सब मिलकर भाषण करते हैं। कोई कहता था। अभी आये थे न ? सुनकर उसे लगा कि, यह करने जैसा लगता है, यहाँ रहने जैसा है। सुनकर ऐसा हो गया। ऐसा बोले थे बेचारे। हम तो भाषण करे। फिर मैंने आपका नाम दिया। आहा..हा... ! अरे.. ! भाषण कौन करे ? यह जड़ की पर्याय (है)। दूसरे को कौन सुधार सके ? वह पर की पर्याय (है)।

यहाँ तो कहते हैं कि, अपने में पुण्य-पाप का भाव जो शुभ-अशुभ है, वह अपने स्वरूप में नहीं, तो उसका कर्ता हो तो उसकी दृष्टि विकार पर ही है और विकार पर दृष्टि होने से निर्विकारी भगवान शुद्ध चिदानंद (का) उसकी दृष्टि में अनादर है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। अनन्तकाल में उसने क्या आत्मा, क्या विकार और क्या पर ?-उसका कभी भेदज्ञान किया नहीं और भेदज्ञान ही संवर है। संवर है न ? देखो !

'भेदज्ञान ही ज्ञान है, बाकी बूरो अज्ञान, धर्मदास क्षुल्लक कहे, हेमराज तू मान।' भेदज्ञान क्या (है) ? कि, आत्मा, शुभ-अशुभभाव कृत्रिम क्षणिक से भी भिन्न है और परद्रव्य से तो त्रिकाल भिन्न है ही और अपने स्वरूप में वर्तमान में अल्प ज्ञान, दर्शन, वीर्य का जो (अल्प) विकास दिखता है, वह एक समय की अवस्था है, वह पूर्ण आत्मा नहीं। उस अवस्था की दृष्टि छोड़कर, शुभाशुभभाव की प्रीति-रूचि छोड़कर, पर की रूचि छोड़कर अपने अखंड ज्ञायकस्वभाव में अन्तर्मुख में अंतर्दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। मिथ्यादर्शन रोकने को यह ढाल है। समझ में आया ? (उन्होंने) महासत्ता का प्रश्न किया था। महा भगवान

आत्मा... !

जिन पुण्य-पाप नहिं किना, आतम अनुभव चित दीना;
तिन्ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।

इतने शब्द (हैं)। 'दौलतरामजी' ने एक पंक्ति में, गागर में सागर भर दिया है। '**जिन पुण्य-पाप नहिं कीना,...**' दूसरी बात तो कहाँ रही ? यहाँ तो 'कीना' पर वजन है। पर का करना तो कहाँ रहा ? लेकिन शुभ और अशुभभाव भी मेरी चीज नहीं। उसको भी दृष्टि में से छोड़कर '**आतम अनुभव चित दीना...**' भाई ! यहाँ 'कीना' शब्द है न ? उस पर पूरा वजन है।

'**जिन पुण्य-पाप नहिं कीना...**' जिसने भगवान आत्मा पर अन्तर चिंतवन की एकाग्रता द्वारा, शुभाशुभभाव का कर्ता न हुआ और पुण्य-पाप से जिसने लक्ष्य छोड़ दिया। '**आतम अनुभव चित दीना;...**' आत्मा भगवान अनाकुल आनन्द का भंडार भरा है। महाआनन्द का लाभ ऐसा जो मोक्ष, उसका कारण जो मोक्षमार्ग, उसका कारण जो आत्मद्रव्य। महाआनन्द का लाभ जो मोक्ष.. समझ में आया ? मोक्ष की व्याख्या यह (है)। वह पहले आ गया है। महाआनन्द में। महाआनन्द का लाभ। अपनी पर्याय में अतीन्द्रिय महाआनन्द का लाभ (होना), वह मोक्ष (है)। उसका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अपूर्ण, अपूर्ण अल्प आनन्दरूप (है); सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अल्प आनन्दरूप, वह महाआनन्दरूप का कारण मोक्ष का मार्ग (है)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। इस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कारण द्रव्यस्वभाव (है)। समझ में आया ?

द्रव्य अर्थात् वस्तु। एक समय में सच्चिदानन्द पूर्ण शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन, शुद्ध आनन्द आदि एकरूप वस्तु द्रव्य, जिसको 'नियमसार' में कारणपरमात्मा कहा। यहाँ उसको द्रव्य कहा, ध्रुव कहा। यह ध्रुव, मोक्षमार्ग की पर्याय का कारण (है), मोक्षमार्ग की पर्याय मोक्ष का कारण (है)। मोक्ष का कारण मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय का कारण द्रव्यस्वभाव (है)। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- अल्पता क्यों कहा ?

उत्तर :- सम्यग्दर्शन की अल्पता नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में अल्प आनन्द है। मोक्षमार्ग में अल्प आनन्द (है)। मार्ग है न ? कारण है न ? कार्य हुआ तो पूर्णानन्द हो गया। उसका आश्रय जो करना है, सम्यग्दर्शन का आश्रय है वह तो पूर्णानन्द आत्मद्रव्य है, परन्तु आनन्द की प्रतीति हुई, उसमें आनन्द आया, वह अल्प आनन्द आया है। पूर्ण आनन्द प्रगट हो जाये तो मोक्ष हो जाये। समझ में आया ? आहा..हा... !

यहाँ कहते हैं, '**आतम अनुभव चित दीना,...**' देखो ! भाषा कैसी है !'**जिन पुण्य-पाप नहिं कीना,...**' शुभ-अशुभभाव, दूसरी बात तो कहाँ रही ? शरीर, कर्म, बाह्य पदार्थ का कार्य तो नहीं परन्तु शुभ-अशुभभाव भी नहीं किया, उसने आतम अनुभव चित्त दिया। आत्मा अखंड ज्ञायकमूर्ति है, उसमें उसका मन लगा। क्या हुआ ? 'अनुभव' शब्द का अर्थ शुद्धउपयोग है। शुभ-अशुभभाव है न ? पुण्य और पाप शुभ-अशुभभाव है, आस्रव है। उसको रोककर अर्थात् उस ओर का लक्ष्य और कर्तापने की बुद्धि छोड़कर, भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आत्मतत्त्व है उसमें चित्त लगाया तो शुद्ध उपयोग में आत्मा का भान हुआ कि, यह आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है। ऐसा शुद्धभाव हुआ, उसके अशुद्धभाव रुकते हैं और उसके कर्म भी रुक जाते हैं। भाई ! यह तो बहुत संक्षिप्त शब्द में कहा है। गागर में सागर भर दिया है। ये 'छहढाला' तो बहुत चलती है या नहीं ? लेकिन अर्थ समझे नहीं।

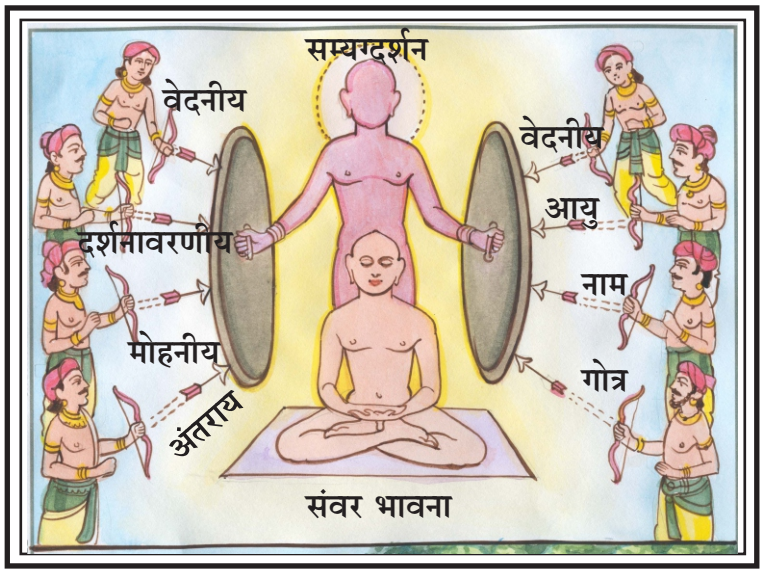

'**आत्म अनुभव चित दीना; तिनही विधि आवत रोके,...**' ढाल। '**विधि**' नाम आठ कर्म। उसमें दो तरफ ढाल ली है, देखो ! एक ओर चार कर्म और दूसरी ओर चार कर्म। एक घाति और अघाति। भगवान आत्मा अपने स्वभाव में शुद्धतारूपी दृष्टि और ज्ञान के कारण अन्तर में रुका तो उसको पुण्य-पाप का भाव आदि बन्ध आदि रुक जाते हैं। बाद में '**विधि आवत रोके**' वे रुक गये। '**संवर लहि सुख अवलोके।**' महा शब्द पड़ा है। भगवान आत्मा, जिसमें परम महाआनन्द है। अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त अचिंत्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। सत् चिद् आनन्द, शाश्वत आनन्द, उसमें अन्तर एकाग्र होता (है)। कहते हैं कि, संवर क्या? कि, जिसमें संवर लहि सुख (का) साक्षात्कार करे। आनन्द का साक्षात्कार करे। आहा..हा...! है ?

'**संवर लहि सुख अवलोके।**' देखो ! अपने 'साक्षात्' का अर्थ किया है। हिन्दी में भी वही अर्थ है। जो अनादिकाल का शुभ-अशुभभाव और परवस्तु का कर्ता ऐसा जो मिथ्यात्वभाव (होता था), वह दु:ख का वेदन करनेवाला था। दु:ख का वेदन करनेवाला था। भैया ! समझे ? पुण्य-पाप का भाव मैंने किया, ऐसे विकार को निर्विकार स्वभाव में एकत्व (न) करके कर्ता होता था तो वहाँ भ्रमणा मिथ्यात्व उत्पन्न होता था। परन्तु मिथ्याभाव में अकेला दु:ख था। समझ में आया ? इस दु:ख का नाश (किया)। अपना स्वरूप पुण्य-पाप के विकल्प से (रहित है)। कर्म, शरीर से तो रहित है ही, क्यों ? कर्म, शरीर तो आत्मा की एक समय की पर्याय में भी उसकी मौजूदगी नहीं है। कर्म, शरीर की अजीव की, आत्मा की एक समय की पर्याय में भी मौजूदगी नहीं है। समझ में आया ? परन्तु अपनी पर्याय में शुभ और अशुभ जो विकार की मौजूदगी एक समय में है,... समझ में आया ? एक समय में शुभ और अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध का शुभाशुभभाव, आत्मा की पर्याय अर्थात् अवस्था में मौजूदगी-अस्ति है, उसकी भी रूचि छोड़कर, ज्ञायक चिदानन्द पूर्ण द्रव्यस्वभाव में चित्त लगाया तो मिथ्यात्व का नाश होकर अर्थात् दु:ख का नाश होकर अर्थात् आत्मा के सुख का साक्षात्कार-अवलोकन हुआ। आहा..हा...!

मुमुक्षु :- गागर में सागर निकला।

उत्तर :- सागर में से थोड़ा निकला। पूरा सागर नहीं निकला।

मुमुक्षु :- दु:ख दिखता नहीं।

उत्तर :- हर्ष सन्निपातिया को दु:ख का भान नहीं है तो कैसे दिखे ? हर्ष सन्नेपातिया समझते हो ? भैया ! वात, पित्त और कफ रोग नहीं होता ? सन्निपात। त्रिदोष। त्रिदोष होता है न ? वात, पित्त, कफ का रोग। वक्र होता है तो वह हँसता है। क्या सुखी है ? नहीं। ए.. देवानुप्रिया। सन्निपातवाला हँसता है। यह सन्निपात है। मिथ्यात्व, अव्रत और कषाय। अथवा मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय अर्थात् अचारित्र। ये तीन का उसे रोग लगा है। जैसे वात, पित्त और कफ सन्निपात त्रिदोष के कारण दु:खी है, फिर भी हँसता है। ऐसे अज्ञानी अनादि से अपना शुद्ध स्वरूप परमानन्द की दृष्टि से विपरीत दृष्टि, अपने स्वरूप के ज्ञान से विपरीत ज्ञान, अपने स्वरूप से विपरीत राग-द्वेष का आचरण, इन तीनों का उसको त्रिदोष लगा है। बराबर है ? इस त्रिदोष के कारण उसे पूर्ण दु:ख है (लेकिन) भान नहीं। मैं दु:खी हूँ, या नहीं, मालूम नहीं। भाई ! ये दु:ख नहीं लगता ? ए.. देवानुप्रिया।

मुमुक्षु :- एक बार वे बहुत रोते थे।

उत्तर :- कब रोते थे ? कुछ था ? स्त्री मर गई तब ? क्या था ? उस दिन ? होगा। ठीक से याद नहीं है। सुख में रोना आता है, क्यों ? दु:ख है लेकिन भान नहीं। कहा न ? मजबूत शरीर (हो), ३२ साल का युवान और वात, पित्त, कफ रोग ने ऐसा घेरा, ऐसा घिराया (कि), लोग देखे कि, अभी एक घंटे में देह छूट जायेगा। वह हँसता है। वह सुख है ? मानता है। कल्पना में, अज्ञान में मानता है; दु:ख है। हँसता है, वह दु:ख है।

ऐसे भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और लीनता छोड़कर मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष के आचरण में रुककर (सुखी मानता है)। वह है दु:खी पूरा, लेकन अज्ञानी अज्ञान में सुख मानता है। सुख है ही नहीं। भाई ! कैसे होगा यह ?

मुमुक्षु :- दु:ख मालूम क्यों नहीं पड़ता ?

उत्तर :- कहा न, पागल हो गया है तो कहाँ से मालूम पड़े ? सन्निपात हो गया। त्रिदोष में

भान नहीं, कुछ भान नहीं। ओ..हो..हो...! एक शुभराग उठना, वह भी उन्माद, दुःख है। आहा..हा...! 'समाधिशतक' में 'पूज्यपादस्वामी' कहते हैं, उपदेश का एक शुभराग उठना (वह उन्माद है)। आहा..हा...! कहते हैं, भैया ! समझे ? वह राग है या नहीं ? राग है, वह उन्माद है। भगवान आत्मा वीतराग अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु है, उससे, शुभराग भी आनन्द से विपरीत है। विपरीत है तो शुभराग भी दुःखरूप है। अशुभराग तो दुःखरूप है ही परन्तु शुभराग है न ! अपना स्वरूप अनाकुल आनन्द, वीतरागकन्द (है), उसमें से हटकर शुभ-अशुभ दोनों भाव दुःखरूप है। समझ में आया ? परन्तु अज्ञानी को सुख क्या चीज है, अन्तर में उसे मिलान करने की ताकत नहीं है तो वह दुःख को ही सुख मानता है। आहा..! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, **'जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित्त दीना;'** भगवान आत्मा शुभाशुभभाव से भी रहित, ऐसे आत्मा में जिसने चित्त दिया, उसने आनेवाले कर्म को रोका। रोका का अर्थ-आते थे और रोका-ऐसा नहीं। भाषा तो ऐसी है, देखो ! **'तिनही विधि आवत रोके'** समझ में आया ? अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूप, उसमें दृष्टि, ज्ञान लगाया तो कर्म आते थे उसे रोके, उसका अर्थ क्या ? कि, उसको कर्म आते नहीं, आनेवाले थे ही नहीं। (आनेवाले) थे ही नहीं। वह तो जब विकार करता हो उसको निमित्त में आनेवाला था। यहाँ विकार नहीं किया तो कर्म आनेवाला है ही नहीं। परन्तु आनेवाल पूर्व में आया था, उस अपेक्षा से वर्तमान में रोका-ऐसा कहने में आता है। आहा..हा...! कठिन बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पूर्व में जो आये थे..

उत्तर :- पूर्व में जो आये थे, वे कर्म पड़े हैं, पड़े हैं, बस इतना।

मुमुक्षु :- किसको रोका ?

उत्तर :- कहा न, किसी को रोका नहीं, लेकिन रोका क्यों कहा ? कि, अपना स्वभाव में दृष्टि और ज्ञान दिया तो पहले जो नहीं दिया था और (कर्म) आया था, ऐसे (कर्म) वर्तमान में नहीं आया, उसको रोका ऐसा कहने में आया है। समझ में थोड़ा सूक्ष्म पडेगा। फिर से, फिर से (लेते हैं)।

यहाँ तो नये रजकण है न ? पहले मिथ्यात्व था, तब तो मिथ्यादर्शन के रजकण आते थे। समझ में आया ? राग-द्वेष था तो चारित्रमोह का रजकण आता था, बस उतना। अब यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ तो कर्म को रोका उसका अर्थ क्या ? कर्म आनेवाले ही नहीं थे। आया और रोका कहा वह तो शब्द-कथन है। पूर्व का आया था, वह अभी आया नहीं, क्योंकि यहाँ आत्मा की दृष्टि, अनुभव हुई तो कर्म का आना उस समय में हुआ ही नहीं। हुआ नहीं उसको रोका-ऐसा कहने में आता है। आहा..हा... ! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु :- कर्म का उदय आया..

उत्तर :- उदय आया नहीं, उसकी बात नहीं। उदय की बात कौन कहता है ? यहाँ उदय की बात नहीं है। नहीं, नहीं। तुम पकड़ नहीं सके। उदय की बात है, वह जड़ की बात है।

यहाँ तो आत्मा पहले जब मिथ्यात्वभाव करता था और राग-द्वेष करता था, तब कर्म आता था। कर्म रजकण उसके कारण से, हाँ ! कर्म, कर्म के कारण से आता था। बस इतना। वह पड़ा इतना। अब जब आत्मा ने अपने स्वरूप में चित्त दिया तो कर्म आनेवाला था ही नहीं। आनेवाला है और रोका है-ऐसा नहीं है। वह तो शब्द ऐसा बताया है। थोड़ी सूक्ष्म बात (है)। समझ में आया ?

आत्मा-अपना शुद्ध स्वरूप परमानन्द की मूर्ति (है), उसको भूलकर पुण्य-पाप का कर्ता मिथ्यात्वभाव में होता है तो नया कर्म उस समय आनेवाला था, उसकी योग्यता से आया। बस, इतना। अब जब अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट किया, अपने में चित्त दिया तो शुभाशुभभाव हुआ ही नहीं। अपने स्वरूप में चित्त दिया तो मिथ्यात्वभाव हुआ नहीं। मिथ्यात्वभाव हुआ नहीं तो मिथ्यात्वभाव से जो नया कर्म आनेवाला था, वह भी आया नहीं। बस, आया नहीं, उसको रोका ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? भाई ! पूर्व के कर्म की बात नहीं है। यहाँ तो अभी नया कर्म नहीं आया। नया कर्म आनेवाला था और नहीं आया, यह तो वह तो एक शब्द की रचना है।

अपने शुद्ध स्वरूप का मानना नहीं था और मैं विकार हूँ, पुण्य-पाप हूँ, शरीर हूँ-ऐसा विकारी अंश के अस्तित्व में और पर के अस्तित्व की मौजूदगी में अपना स्वरूप माना था तो

मिथ्या भ्रांति थी। उस भ्रांति के निमित्त.. भ्रांति निमित्त और नया दर्शनमोह आना उसके उपादानकारण से, कर्म के उपादान कारण से कर्म आया, उसको मिथ्यात्व निमित्त कहा। समझ में आया ? जब आत्मा ने अपने में चित्त दिया तो मिथ्यात्व का तो नाश हुआ। मिथ्यात्व का नाश हुआ तो मिथ्यात्व का रजकण जो पहले आता था, वह अभी आया। बहुत सूक्ष्म बात है। शास्त्र की रचना, समझावे कैसे ?

अपने स्वरूप में चित्त दिया तो विकार हुआ नहीं, विकार हुआ नहीं तो नया आवरण जो आनेवाला था, वह आया ही नहीं। आया नहीं अर्थात् आनेवाला था ही नहीं। आहा..हा...! अरे..! भगवान ! समझ में आया ? यहाँ सम्यक् अन्तर दृष्टि हुई तो उस समय मिथ्यात्व का रजकण आनेवाला था ? मिथ्यात्वभाव है नहीं तो कहाँ से आनेवाला था ? समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात (है)। शास्त्र की रचना ऐसी है कि, अपने स्वरूप की दृष्टि, चित्त लगाया तो उस समय मिथ्याभ्रांति तो है नहीं। भ्रांति है नहीं तो भ्रांति जिसमें निमित्त पडती थी, ऐसा कर्म जो पहले आता था, वह आया नहीं; आनेवाला था ही नहीं। इन लोगों को विषय नया लगे, यहाँ तो बहुत बात चल गई है।

मुमुक्षु :- आने में तो भ्रांति निमित्त थी।

उत्तर :- भ्रांति निमित्त थी।

मुमुक्षु :- न आने में भाव निमित्त है ?

उत्तर :- निमित्त अर्थात् आनेवाला था ही नहीं, उसका नाम निमित्त। आनेवाला कौन था ? आनेवाला हो तो यहाँ विकार हो। समझ में आया ? विकार नहीं हुआ तो आनेवाला था ही नहीं। सूक्ष्म बात है। तात्त्विक बात ऐसी चीज है। अपने उपादान में जब भ्रांति थी कि, मैं राग हूँ, पुण्य कर्ता हूँ, शुभ आस्रव का कर्ता हूँ, तब वह भ्रांति मिथ्यात्व है। तब तो दर्शनमोह कर्म आता था। उसके कारण, हाँ ! जड़ के कारण (आता था)। उसमें भ्रांति निमित्त पड़ती थी, बस, इतना। अब जब भ्रांति छूट गई तो रजकण आनेवाला था ही नहीं। समझ में आया ? पूर्व का पड़ा है, वह तो नाश हो जायेगा। वह तो निर्जरा में कहेंगे। यह तो संवर की बात है न ? यह तो संवर की बात है। पूर्व का पड़ा है वह तो शुद्धता की वृद्धि के कारण नाश होगा, परन्तु यहाँ नया आनेवाला था और

रोका ऐसा नहीं है। ऐ..ई..। कठिन बात है, भाई !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- कौन रोके ? ये कर्म आते थे, उसे रोक दो, ऐसा है ? उसका अर्थ यह है कि, अपने शुद्ध स्वरूप में जहाँ चित्त दिया तो भ्रांति हुई नहीं तो कर्म आनेवाला था ही नहीं। उसको कर्म रोका ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? तत्त्व तत्त्व बहुत (सूक्ष्म है)। वह दृष्टान्त देते हैं न ? जैसे तालाब है या नहीं ? उसमें छिद्र है। नाव लो, नाव। नाव में छिद्र है तो पानी आता था। छिद्र (बन्द किया) तो (पानी) रुक गया। पानी आता था और रोका है, ऐसा ? बस, यहाँ बन्द किया तो पानी आता ही नहीं। पानी आनेवाला है ही नहीं, आनेवाला है ही नहीं। छिद्र बन्द किया तो पानी आनेवाला है ही नहीं। ऐसे यहाँ राग-द्वेष रुका तो रजकण आनेवाला है ही नहीं। आहा..हा..! दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं। भूल करता था तो भूल निमित्त (है) और नय रजकण उपादान से आता था, उसको निमित्त कहते हैं। भूल निकल गई, चित्त आत्मा में दिया, तो भूल नहीं है, तो आनेवाला रजकण जो पूर्व में आया था, वह तो पड़ा है, अभी नहीं है, नया आनेवाला नहीं है, उसको रोका-ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आता है ? वह तो रोकने का अर्थ किया।

अब यहाँ कहते हैं, **'संवर लहि सुख अवलोके।'** उसमें चौथे पद में बड़ा पद पड़ा है। देखो ! संवर। भगवान आत्मा अपने स्वरूप में चित्त लगाया तो शुभाशुभ परिणाम से चित्त हटाया। चित लगाया तो अन्तर में आत्मा में जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसको संवर अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा अवलोकन हुआ (कि), यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। एक बात। और उसके साथ संवर हुआ तो वर्तमान में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ, उसका अवलोकन हुआ, शान्ति का वेदन हुआ, उसका नाम संवर कहते हैं। आहा..हा... !

फिर से, फिर से कहते हैं। थोड़ी थोड़ी सूक्ष्म बात है। अनन्तकाल से मूल तत्त्व की बात सुनी नहीं, सुनी नहीं। आहा..! समझ में आया ? भगवान आत्मा.. आत्मा अर्थात् क्या ? पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द.. शान्ति शब्द (का अर्थ) चारित्र। गुण, समझे ? गुण त्रिकाल। आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन... क्योंकि स्वभाव है ना ? स्वभाव में मर्यादा नहीं होती, मितता नहीं

होती, मित अर्थात् मर्यादा न हो, बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद आनन्द, बेहद शान्ति, बेहद वीर्य। बेहद प्रभुता। ऐसी एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति-सामर्थ्य (है), ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का पिंड एक द्रव्य-वस्तु (है)। ऐसे द्रव्य में चित्त लगाया। समझ में आया ? तो कहते हैं कि, आत्मा का आनन्द जो है, उसका ज्ञान से अवलोकन हुआ और एकाग्र हुआ तो जैसा आनन्द है-ऐसा आनन्द पर्याय में भी वर्तमान में प्रत्यक्ष साक्षात्कार-वेदन हुआ। आहा..हा... !

साक्षात्कार क्यों कहा है ? अवलोके का अर्थ-जैसा दु:ख का वेदन था वह वेदन करनेवाला तो साक्षात् वेदन करता था न ? मिथ्यात्व में, राग-द्वेष में, विकार में दु:ख का वेदन करता था, वह दु:खी है। मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव दु:ख है तो वेदन करता था। भान नहीं था। समझ में आया ? यहाँ जहाँ आत्मा में शुभाशुभ परिणाम से, पर उपर से लक्ष्य हटाकर, अपने मूल शुद्ध स्वरूप पर चित्त दिया तो अन्तर में जो आनन्द है, उस आनन्द का अंश प्रगट वर्तमान हुआ, उसके द्वारा सारा आत्मा आनन्दमय है-ऐसा प्रतीति में लिया और वर्तमान अतीन्द्रिय आनन्द का अवलोकन साक्षात् प्रगट है, उसका वेदन हुआ। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- अशुभ से तो ठीक परन्तु शुभ से कैसे हटे ?

उत्तर :- शुभ और अशुभ दोनों एक है। छूटना क्या ? शुभ-अशुभ परदिशा, परलक्ष्य से उत्पन्न होता है। अपना लक्ष्य करने में दोनों परलक्ष्यवाला भाव उत्पन्न होता नहीं। शुभ-अशुभ दोनों भाव परलक्ष्य से उत्पन्न होते हैं, स्वलक्ष्य से नहीं। समझ में आया ? अरे.. ! भगवान !

मुमुक्षु :- साक्षात्कार का अर्थ क्या ?

उत्तर :- साक्षात्कार का अर्थ प्रत्यक्ष। आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन हुआ। जो आनन्द अन्दर शक्ति में था, आत्मा में अतीन्द्रिय महाआनन्द शक्ति में था, अप्रगट था, वहाँ चित्त दिया तो आनन्द का अंश प्रगट पर्याय में आया, उसका साक्षात्कार किया अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन किया। वेदन प्रत्यक्ष किया। वेदन कोई करता है और यहाँ आनन्द प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं। प्रगट आनन्दमय सुधारस का स्वाद (आया)। संवर में सुधारस का स्वाद (आया)। यह तो अन्दर की

खोली हुई मर्म की बातें हैं। संवर चीज कोई ऐसी नहीं कि, ऐसे ही संवर हो गया। समझ में आया ?

... पुण्य-पाप के विकल्प का था। ऐसी वस्तु निर्विकल्प चैतन्य का वेदन हुआ-स्वाद आया। क्या (कहा) ? आत्मा के आनन्द का स्वाद आया। इस स्वाद को यहाँ प्रत्यक्ष कहने में आता है, उसको साक्षात्कार कहते हैं। समझे थोड़ा ? यह तो आत्मा की अलौकिक बात है, भैया ! अनन्त काल में उस ओर का प्रयत्न, प्रयोग कैसे करना, वह विधि सुनी ही नहीं। आहा..हा... ! सारा संसार विकार,.. उस विकार संसार से रूचि हटाकर प्रथम में, हाँ ! प्रथम। सारा संसार का अर्थ पुण्य-पापभाव से सारा संसार विकार है।

भगवान आत्मा शान्ति और आनन्द की शिला, आनन्द की-बर्फ की शिला (है)। उसमें जिसने चित्त दिया (तो) पुण्य-पाप का आस्रव जो दु:खरूप था, वह रुक गया, उत्पन्न नहीं हुआ। नया आवरण भी उस प्रकार का रुक गया। आत्मा में अतीन्द्रिय अनाकूल शान्ति का जो स्वभाव था, उसमें चित्त लगाया का अर्थ एकाग्र हुआ। एकाग्र हुआ तो विकार में एकाग्र था वह तो दु:ख था। विकार से हटकर चित्त यहाँ लगाया तो आनन्द की पर्याय प्रगट हुई। समझ में आया ? उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ? ढाल लिखा है, देखो न ! आठों कर्म (को ढाल से रोका है)।

'संवर लहि सुख अवलोके।' एक शब्द में तो बहुत (भाव) भरा है। गागर में सागर भर दिया है। पहले के पंडित ने बहुत अच्छी बात की है। अभी बहुत गड़बड़ हो गई। (इनको) तो मालूम है न। यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव साक्षात् केवलज्ञानी ने कहा हुआ तत्त्व है। समझ में आया ? अनन्त तीर्थंकर चले गये, वर्तमान भगवान बिराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा 'सीमंधर' प्रभु आदि तीर्थंकर बिराजते हैं। समझ में आया ? जिनके ज्ञान के एक समय में अपनी पर्याय का पूर्ण अवलोगन में लोकालोक का अवलोकन हो गया। अपने एक समय के पूर्ण अवलोकन में... यहाँ आगे कहेंगे। समझे ? इसमें आगे कहते हैं न ? कहीं पर है। कैसे ध्यान रहे ? '... शिवमग कह्यो।' कहीं पर ऐसे शब्द है। मोक्षदशा का वर्णन है। छठ्ठी साल का तेरहवाँ श्लोक है।

निजमांहि लोक-अलोक गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थये;

रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये।

१३ वाँ श्लोक है, हिन्दी में १७५ पन्ना है। है ? भैया ! १३ गाथा में है। छठ्ठी ढाल का १३वाँ श्लोक। '**निजमांहि लोक-अलोक गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थये;...**' समझ में आया ? आत्मा में लोक और अलोक प्रतिबिम्बित हो गये। अपनी एक समय की पूर्ण पर्याय जहाँ प्रगट हुई (तो) उसमें लोकालोक प्रत्यक्ष हो गया। यहाँ देखते हैं (तो) सब देखते हैं। समझ में आया ?

निजमांहि लोक-अलोक गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थये;

रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये।

धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया;

तिनही अनादि भ्रमण पंचप्रकार तजि वर सुख लिया॥१३॥

आहा..हा...। जिसने मनुष्यभव पाकर ऐसा आत्मानुभव करके केवलज्ञान पाया .. सादि अनन्त सिद्ध हो गये। उनकी दशा में लोकालोक ज्ञेय होते हैं। लोकालोक ऐसे जानना नहीं पड़ता। अपनी पर्याय में देखते हैं तो लोकालोक जानने में आ जाता है। समझ में आया ? भैया ! आहा..हा... ! दिमाग में आ गया।

कहते हैं, देखो ! अब अपने भावार्थ लेते हैं। '**सम्यग्दर्शनादि द्वारा मिथ्यात्वादि आस्रव रुकते हैं। शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग दोनों बन्ध के कारण हैं-ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव पहले से ही जानता है। यद्यपि साधक को निचली भूमिका में शुद्धता के साथ अल्प शुभाशुभभाव होते हैं;...**' स्वभाव में जितनी एकाग्रता हुई उतना शुद्ध और मोक्ष का मार्ग, जितना शुभाशुभ परिणाम है, उतना बन्ध का मार्ग जानते हैं। उसको मोक्ष का मार्ग जानते नहीं। कर्मधारा और ज्ञानधारा। यहाँ संवर भेदज्ञान है न ? जितना चित्त शुद्ध में लगाया और दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धता हुई, वह ज्ञानधारा, वह मोक्षधारा (है)। जितना रागादि रहा वह कर्मधारा, बन्धधारा। एक समय में साधक को दो धारा होती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- समय एक ही ?

उत्तर :- समय एक ही है न। आत्मा में शुद्धता प्रगट हुई, इतनी निर्मल संवर, निर्जरा है और जितना राग है उतना बन्ध का कारण है। एक समय में दो है न ! दो न हो तो पूर्ण मोक्ष हो जाये या मिथ्यादृष्टि हो जाये। शुद्धता और अशुद्धता के समय में दो है। जितना आत्मा में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट की, इतनी शुद्धता (है) और जितना अभी राग रहा, मुनि को पँच महाव्रत आदि का विकल्प है, वह विकल्प राग है। विकल्प, राग है, वह अशुद्धता है, बन्ध का कारण है। साधक में कर्मधारा और ज्ञानधारा एक समय में दोनों चलती है। यहाँ साधक की बात चलती है न ? मोक्ष में तो पूर्ण हो गया। मोक्ष में तो (दो) है नहीं, एक ही पूर्णानन्द शुद्धधारा हो गई। सम्यग्दृष्टि तो साधक है न ?

सम्यग्दृष्टि, पाँचवे, छठ्ठे सब को दो धारा रहती है। समझ में आया ? यदि पूर्ण शुद्ध हो जाये तो मोक्ष हो जाये और पूर्ण अकेली अशुद्धता हो तो वह तो मिथ्यादृष्टि में है। समझ में आया ? अकेली अशुद्धता, पुण्य-पाप और मिथ्याभ्रांति अकेली अशुद्धता (है)। वह तो संसारी, मिथ्यादृष्टि है। अकेली पूर्ण शुद्धता मोक्ष है। जब साधक जीव को मोक्षमार्ग हुआ तो अपने चैतन्य में जितनी एकाग्रता-चित्त लगाया, इतनी शुद्धता है और बाकी रहा राग, इतनी अशुद्धता है। वह अशुद्धता, बन्ध का कारण है; शुद्धता, संवर-निर्जरा का कारण है।

मुमुक्षु :- मिथ्यात्व में दूसरी धारा का अंश..

उत्तर :- मिथ्यात्व में तो एक ही अशुद्ध धारा (है)। यहाँ तो एक ही है। मिथ्यात्व, अज्ञान है। अकेली अशुद्ध धारा है।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- मिथ्यात्व में कहाँ है, वह तो अकेला अज्ञान है। सम्यग्दर्शन में शुद्धधारा और अशुद्धधारा दोनों रहती है। मोक्ष में अकेली शुद्धता (है)। मिथ्यादृष्टि में क्या है ? पुण्य-पाप मेरा है-ऐसा मानता है, उसमें तो अकेली मिथ्यात्व-अशुद्ध धारा ही है। अकेला मिथ्यात्वभाव पड़ा है।

मुमुक्षु :- मन्द कषाय हो तो..

उत्तर :- नहीं, नहीं। मन्द कषा हो या तीव्र कषाय हो, सब कर्मचक्र है। सब मिथ्यात्वभाव, अकेला अशुद्धभाव है।

यहाँ तो कहते हैं, '**निचली भूमिका में शुद्धता के साथ अल्प शुभाशुभभाव होते हैं;...**' अर्थात् साथ में होते हैं, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा अपना चित्त जितना अन्तर शुद्ध में लगाया, दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता (हुई) इतनी शुद्धता (है)। जितनी रागादि अस्थिरता बाकी है, इतनी अशुद्धता (है)। सम्यग्दृष्टि को या मुनि को भी दो धारा है। जितना राग है, इतना बन्ध का कारण है; जितनी स्वभाव की एकाग्रता का शुद्धता है, वह संवर-निर्जरा का कारण है। समझ में आया ?

दोनों बन्ध का कारण है। '**इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा..**' देखो ! स्वद्रव्य के (आलम्बन द्वारा अर्थात्) ज्ञानधारा। '**आलम्बन द्वारा जितने अंश में शुद्धता करता है उतने अंश उसे संवर होता है...**' जितने अंश में आत्मद्रव्य में चित्त लगाया। एकाकार शुभाशुभ परिणाम से रहित (हुआ) इतना संवर है। '**और वह क्रमशः शुद्धता में वृद्धि करके पूर्ण शुद्धता (संवर) प्राप्त करता है। यह संवर भावना है।**' यह संवर भावना हुई। अब निर्जरा (भावना)। सम्यग्दृष्टि जीव निर्जरा भावना भाते हैं। मुनि भी निर्जरा आदि बारह भावना करते हैं।

मुमुक्षु :- संवर प्राप्त करता है और बाद में मोक्ष हो जाता है..

उत्तर :- हाँ, बाद में मोक्ष हो गया न। वह संवर अर्थात् पूर्ण शुद्धता। पूर्ण शुद्धता, पूर्ण चारित्र हो गया, ऐसे लेना। अपूर्ण नहीं रहा। वहाँ '**संवर लही सुख अवलोके।**' ऐसा है न ? उसका अर्थ पूर्ण कर दिया।

९- निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना;

तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ।।११।।

अन्वयार्थ :- जो (निज काल) अपनी-अपनी स्थिति (पाय) पूर्ण होने पर (विधि) कर्म (झरना) खिर जाते हैं (तासौं) उससे (निज काज) जीव का धर्मरूपी कार्य (न सरना) नहीं होता; किन्तु (जो) (निर्जरा) (तप करि) आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा (कर्म) कर्मों का (खिपावै) नाश करती है (वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा है। (सोई) वह (शिवसुख) मोक्ष का सुख (दरसाव) दिखलाती है।

भावार्थ :- अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का खिर जाना तो प्रतिसमय अज्ञानी को भी होता है; वह कहीं शुद्धि का कारण नहीं होता। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा अर्थात् आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं, यह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है। तद्नुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है, तब जीव शिवसुख (सुख की पूर्णतारूप मोक्ष) प्राप्त करता है। ऐसा जानता हुआ सम्यग्दृष्टि जो स्वद्रव्य के आलम्बन द्वारा जो शुद्धि की वृद्धि करता है, वह 'निर्जरा भावना' है ।।११।।

'**निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना;**' (एक मुमुक्षु) बोलते थे न ? 'निज कार्य न सरना'। ऐ..ई..! तेरापंथ में आता है न ? स्थानकवासी में तेरापंथी है न ? वह कहते हैं, मिथ्यादृष्टि में कुछ भी करे तो 'निज काज न सरना।' यहाँ 'निज काज न सरना' (आया है)।

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना;

तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।

उसको शब्दार्थ देखो ! '**निज काल पाय...**' अपनी-अपनी कर्म की स्थिति पाकर, जो '**पूर्ण होने पर कर्म खिर जाते हैं, उससे जीव का धर्मरूपी कार्य नहीं होता;...**' क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? जो कोई अपना पूर्व कर्म बाँधा था, उस बँधे हुए का उदय आया, वह उदय

आया खिर जाता है। समझ में आया ? सविपाक। सविपाकनिर्जरा कहते हैं। क्या कहा ? पूर्व का जो कर्मबन्ध पड़ा है, उदय आकर पाक आया, वह खिर जाता है। देखो ! उसमें लिखा है। देखो ! पक कर खिर जाता है न ? ऐसा अन्दर में लिखा है। पूर्व का कर्म आया, वह खिर जाये, वह तो उसका उदय आया और खिर जाता है। उसमें आत्मा का कोई कार्य सिद्ध होता नहीं। उसमें अपना कुछ लाभ नहीं है। उसमें अपना कार्य नहीं होता। उसमें क्या कार्य हो ? पूर्व का कर्म उदय में आता है, वह खिर जाता है। वह तो प्रत्येक प्राणी को है। निरोग को भी है। एकेन्द्रिय से लेकर मिथ्यादृष्टि आदि सब को पूर्व का कर्म आता है, वह खिर जाता है, उसमें क्या ? आत्मा का कार्य सिद्ध नहीं होता।

'**किन्तु (जो निर्जरा) (तप करि कर्म खिपावे)...**' तप की व्याख्या-स्वरूप का आनन्द अवलम्बन लेकर इच्छा की उत्पत्ति न हो, उसका नाम तप (है)। यहाँ तप अर्थात् '**प्रतपन इति तपः**' भगवान आत्मा अपनी शुद्ध दृष्टि लगाई है, बाद में विशेष शुद्धता में एकाकार होना,

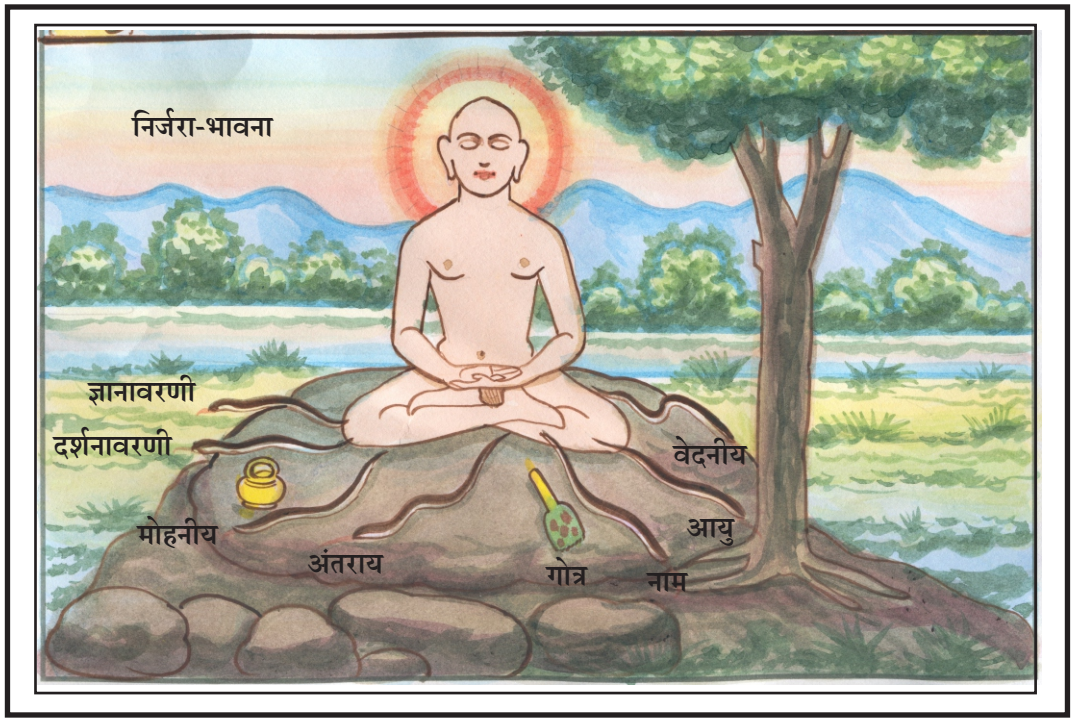

अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में शोभित होना (शोभायमान दशा होना), प्रतपत इति। आत्मा उग्र निर्मल पर्याय से शोभित हो, उसका नाम भगवान यथार्थ तप कहते हैं। नीचे आयेगा। देखो ! समझ में आया ? 'प्रतपन इत पत'-ऐसा है। है न ? 'शुद्ध प्रतपन द्वारा कर्म खिर जाते हैं..' देखो ! अन्दर लिखा है। भावार्थ में लिखा है। '**आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं...**' भावार्थ में लिखा है। चौथी पंक्ति। और शब्दार्थ में यहाँ है, देखो ! '**आत्मा के शुद्ध प्रतन द्वारा...**' अकेला प्रतपन नहीं, कायक्लेश आदि नहीं। शुद्ध प्रतपन। भगवान आत्मा अनाकूल आनन्द की जो दृष्टि हुई है, उसमें उग्रता से लीन होकर, प्रयत्न-विशेषरूप से पुरुषार्थ की जागृति स्वभाव की ओर हुई है, उसका नाम तपस्या कहने में आता है। समझ में आया ? बाहर के जो (तप के) १२ प्रकार है, वह तो शुभभाव है। वह तो अनन्तबार किया, उसमें क्या है ? वह तो पूर्व का बन्ध पड़ा है, वह कर्म खपते हैं।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बाद तप लेते हैं न ? पहले संवर में लिया कि, दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो रोका। अब तप (लेते हैं)। तप का अर्थ क्या ? जो शुद्धता है, उसमें उग्रता (से) अन्तर में शुद्धता बढ़ी। जैसे सोने में-सुवर्ण में गेरु लगाकर... गेरु होता है न ? गेरु। लाल गेरु। सोने पर गेरु लगता है तो सोना शोभता है, ओपता है, शोभता है, प्रदीप्त होता है, चकचकाट होता है। सोने पर गेरु लगाने से। ऐसे भगवान आत्मा अपने शुद्ध (स्वरूप में) चित्त दिया था, उसमें विशेष एकाग्रतारूपी गेरु लगाया। विशेष शुद्धता में आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रतपन अन्दर हुआ, वह आत्मा की पर्याय में महा उग्र शोभायमान दशा हुई, उसको तप कहते हैं। वह निर्जरा का कारण है। आहा..हा... !

चारित्र से भी तप की विशेष व्याख्या है या नहीं ? चारित्र है स्वरूप में लीनता। दर्शन में प्रतीति, ज्ञान के स्वज्ञेय का भान, चारित्र में लीनता। तप में भी उसकी विशेष उग्रता का नाम तप है। समझ में आया ?

ममुक्षु :- 'महावीर' भगवान ने ऐसा तप किया था।

उत्तर :- ऐसा तप किया था। छह महिने ऐसा किया था, ऐसा नहीं। ऐसा तप भगवान ने अन्दर किया था। अन्दर में ध्यानाग्नि लगाई, ऐसी अग्नि प्रज्वलित (की), आनन्द को प्रज्वलित

करके अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद में उग्र अनुभव करते थे, उसका नाम तप है। तब इच्छा की उत्पत्ति नहीं होती थी। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के अनुभव में (इच्छा नहीं होती थी)। समझ में आया ? लोग कहते हैं कि, बाहर से आहार नहीं लिया, आहार नहीं खाया, वह तप है। ऐसा अनन्तबार किया, उसमें (क्या) आया ? वह तो बाहर की चीज है। परमाणु का आना और जाना, वह तो उसके कारण से है। इच्छा कदाचित् मन्द हुई हो तो वह पुण्य है।

मुमुक्षु :- हजारों बार जाता है तो भी कुछ नहीं होता।

उत्तर :- धर्म एक क्षण में होता है। आया ना ? '**मुनिव्रत धार अन्तबार ग्रिवक उपजायो।**' पहले आया न ? 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै नजि आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान, त्रिगुप्ति में अन्दर रुक गया। मन से, वाणी से, देह से रुककर अन्दर में स्थिर हो गया, (उसमें) एक क्षण में जो शुद्धता प्रगट होती है (और) कर्म का नाश करते हैं। आहा..हा...! अभी आत्मा की किंमत नहीं, इसलिये यह नहीं खाना, नहीं पीना वह तप, और उस तप से धर्म होगा (-ऐसा मानते हैं)।

मुमुक्षु :- आसान पड़ता है।

उत्तर :- आसान क्या ? राग आसान होता है।

यहाँ तो कहते हैं, '**आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा कर्मों का नाश करती है (यह अकाम अथवा सकाम निर्जर है)।**' अविपाक निर्जरा। अपने पुरुषार्थ (से) अनुभव करके आनन्द का अनुभव करके जो खिर जाते हैं, उसको अकाम निर्जरा न करके सकाम निर्जरा है और सविपाक नहीं परन्तु वह अविपाक है।

'**यह मोक्ष का सुख दिखलाती है।**' देखो ! संवर में भी लिया। '**संवर लहि सुख अवलोके।**' यहाँ '**शिवसुख दरसावै।**' (ऐसा कहा)। निर्जरा करते.. करते.. करते.. करते आनन्द की शुद्धता बढ़ जाये, अतीन्द्रिय आनन्द करते.. करते.. पूर्ण आनन्द हो जाये, उसका नाम मोक्ष (है)। आहा..हा...! निर्जरा में सुख है, दुःख नहीं, आनन्द है। उपवास करने से कष्ट दिखता है, वह तो आर्तध्यान है।

अन्तर में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में जिसको मालूम नहीं कि इच्छा उत्पन्न

होता है कि नहीं, ऐसे आनन्द में लीन, अतीन्द्रिय में लीन हो जाना उसका नाम तप है। आहा..हा...! समझ में आया ? बाकी तो लंघन है। 'टोडरमलजी' में आया न ? निर्जरा करते-करते शिवसुख को दिखलाती है। वर्तमान में भी निर्जरा सुख दर्शाती है। निर्जरा में भी, जब संवर में सुख का भान है तो निर्जरा में भी सुख की विशेष वृद्धि का भान है। आहा..हा...! समझ में आया ? जब संवर में सुख का साक्षात्कार होता है, तो निर्जरा में विशेष शान्ति का, आनन्द का साक्षात्कार होता है, ऐसा कहते हैं। निर्जरा ऐसी नहीं है कि.. लेकिन तुझे आनन्द वृद्धि हुई या नहीं ? अतीन्द्रिय आनन्द की वृद्धि होना, वह निर्जरा है। शुद्ध उपयोग को निर्जरा कहा है। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं, मोक्ष का सुख दर्शावे। (संवर में) अवलोके, यहाँ अधिक दिखाते हैं। संवर में जितना सुख है, उससे निर्जरा में विशेष आनन्द है। उसका नाम निर्जरा कहते हैं। ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि यथार्थपने भाते हैं। (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❁

आहा हा ! आनन्दका नाथ परमात्म-स्वरूप आत्मा - यह महा गम्भीर वस्तु है । लोगोंको अपरिचितसा लगता है । जैसे अपरिचित देशमें जायें तो अपरिचितसा अपरिचितसा लगता है । पर बापू ! ये तो भगवानके देशकी बाते हैं, जो इन्हें रुचिसे सुने तो उसके निज-धरकी ही बातें हैं । अपरिचित कुछ नहीं, अपना ही है । अनन्त-अनन्त जन्म-मरणके नाशकी बातें हैं । इसके लिए अभ्यास चाहिए, निवृति चाहिए । लौकिक पढ़ाईमें भी दस-पन्द्रह वर्ष लगाते हैं, तो इसका भी थोड़ा समय निकाल कर अभ्यास करना चाहिए । यह वस्तु गम्भीर है । निश्चय किस प्रकार है, व्यवहार किस प्रकार है, आदि जानना चाहिए । ये तो सर्वज्ञकी जानी और कही हुई बातें हैं, इन्हें रूचिपूर्वक अन्तरमें उतर कर अनुभव करे - तो इसकी महीमा कैसी और कितनी है ! सो खयालमें आए । (परमागमसार-४१६)